IJAER/March-April 2016/Volume-5/Issue-2 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

डॉ. रामविलास शर्मा और लोकजागरण काव्यधार

डॉ. देवेन्द्र सिंह,

व्याख्याता – हिन्दी

महारानी श्रीजया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज0)

हिन्दी साहित्येतिहास को आदिकाल, भक्तिकाल व रीतिकाल के अन्तर्गत वीरगाथा, ज्ञानमार्गी, प्रेममार्गी, रामभक्ति, कृष्णभक्ति वर्गीकृत कर अध्ययन करने की परम्परा रही थी। डॉ॰ शर्मा इससे सहमत नहीं है। वे इन सभी काव्यधाराओं के केवल दो वर्ग बनाते हैं **रीतिवादी काव्यधारा** तथा **लोकजागरण की काव्यधारा।**

1. लोकजागरण काव्य का स्वरूप

लोकजागरण की काव्यधारा डॉ॰ शर्मा ने **'लोक जागरण और हिन्दी साहित्य'** नामक पुस्तक की भूमिका में गंभीरता पूर्वक विचार किया है। वे हिन्दी साहित्य के **'भक्तिकाल'** को लोकजागरण कहते हैं क्योंकि, "आत्मकल्याण और लोक कल्याण करने वाले कर्मों की ओर जनता को भक्त कवि ले गये। इसलिए भक्तिकाल को लोकजागरण काल कहना उचित होगा। कबीर, जायसी, सूर और तुलसी का युग लोकजागरण का युग है।. . . ये सारे कवि वीरगाथा काल और रीतिकाल के कवियों की परिपाटी से अलग हटकर रचनाएँ करते हैं।"[1] यह सत्य है कि भक्तिकाल लोकजागरण की मुख्यधारा है लेकिन लोकजागरण की धारा केवल भक्ति काल तक सीमित नहीं है। "इन्हीं की तरह वीरगाथा काल और रीतिकाल के अन्य रूढ़िमुक्त कवि हैं। पर वे सीमित अर्थ में भक्त नहीं हैं। ऐसे रूढ़िमुक्त कवि भक्तिकाल में भी हुए। वीरगाथा काल के खुसरो और विद्यापति, भक्तिकाल के नरोत्तमदास, रहीम और सेनापति तथा रीतिकाल के आलम और धनआनन्द यहाँ उल्लेखनीय हैं। ये कवि रीतिवादियों से दूर हैं, भक्त कवियों से जुड़े हैं। . . .इन्हें एक साथ पढ़ने से लोकजागरण के प्रसार और उनकी विविधता की जानकारी होगी।"[2] **अर्थात् वीरगाथा, भक्ति व रीति से मुक्त कवि लोकजागरण के ही कवि हैं।**

आमतौर पर श्रृंगार की कविता रीतिवादी काव्य का भाग माना जाता है लेकिन डॉ॰ शर्मा श्रृंगार के दो ढंग मानते हैं। पहला ढंग रीतिवाद है। "दूसरा ढंग विद्यापति और सूरदास का है। दोनों ने श्रृंगार रस की कविता रची है और यह कविता रीतिवादी श्रृंगार से भिन्न स्तर की है। . . .सूरदास विद्यापति से जुड़े हुए हैं, बिहारी और देव से नहीं। सूरदास भक्त थे, विद्यापति भक्त नहीं थे। . . .इसलिए रीतिवादी श्रृंगार

काव्य से भिन्न **'रीति–मुक्त शृंगार काव्य'** की धारणा आवष्यक है। इस धारणा के अनुसार विद्यापति से लेकर घनानन्द तक काव्य की एक ही प्रषस्त काव्यधारा दिखाई देगी। तुलसीदास की बरवै रामायण, रामचरितमानस और कवितावाली के अनेक शृंगार अंष इस धारा से जुड़े हुए हैं।"[3]

डॉ॰ शर्मा लोकजागरण काव्य की सबसे प्रमुख धारा भक्ति साहित्य को ही मानते हैं लेकिन वे इसे भक्ति साहित्य न कहकर संत साहित्य नाम देते हैं। "वे इस बात से सहमत नहीं हैं कि निर्गुण पंथी साधुओं को ही संत कहा जाये क्यों सगुण पंथी भी संत थे, वे केवल संसार त्यागी साधुओं को ही संत नहीं मानते क्योंकि संतों में बहुत से गृहस्थ भी थे, संत केवल हिन्दू महात्मा ही नहीं मुसलमान भी थे, केवल पुरुषों को ही संत नहीं कहा जा सकता क्योंकि मीराबाई भी संत मानी जाती हैं। संतों में स्त्री–पुरुष, सन्यासी–गृहस्थ, हिन्दू–मुसलमान तथा सगुण पंथी–निर्गुणपंथी सभी हैं और इनका साहित्य संत साहित्य है।"[4]

वे भक्तों को सगुण–निर्गुण, ज्ञान मार्गी, प्रेम मार्गी या रामभक्त–कृष्ण भक्तों में वर्गीकृत करने का भी विरोध करते हैं। क्योंकि, "कबीर की रामभक्ति और प्रेम साधना से वे सगुण हैं तथा ब्रह्म की अद्वैत सत्ता में विष्वास करने से सूफी, संत और भक्त सभी निर्गुण पंथी हैं, सूर राम को और तुलसी कृष्ण को साहित्य में स्थान देते हैं, प्रेम आधारित में सगुण–निर्गुण का भेद निरर्थक है, तथा तर्क पद्धति के आधार पर, दार्षनिक ज्ञान के आधार पर, आत्मविह्वल भाव–बोध के आधार पर कबीर और तुलसीदास में गहरी समानता है।"[5]

इस प्रकार हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि डॉ॰ शर्मा के लोकजागरण में "सूफियों की प्रेममार्गी साधना, कबीर की बड़ी चुटीली और व्यंग्य और चमत्कार पूर्ण बातें, तुलसीदास की भक्ति, रीतिमुक्त शृंगार, रहीम के बचन तथा आलम, रसखान और धनआनन्द की प्रेम तन्मयता शामिल है।"[6] इसके अलावा उनकी इच्छा है कि, "लोक जागरण की धारा का विवेचन हिन्दी के अलावा भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य में भी किया जाना चाहिए।"[7] वे इसको अखिल भारतीय ही नहीं "पष्चिमी एषिया के कई देषों के लोकजागरण से जुड़ा हुआ भी मानते हैं।"[8] अर्थात् इसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व भी है।

2. लोकजागरण की पृष्ठभूमि

;पद्ध बहुमुखी समृद्धिकाल : यूरोप से श्रेष्ठता

डॉ॰ रामविलास शर्मा भले ही लोकजागरण वाले काव्य का प्रारम्भ विद्यापति और अमीर खुसरो से मानते हैं लेकिन इस काव्य धारा का चरम विकास हमें **'भक्तिकाल'** में देखने को मिलता है तथा इसके बाद यह रीतिकाल तक भी चलता है। इस काव्य धारा की वास्तविक पृष्ठभूमि भारत में मुगल सत्ता का शासन काल ही माना जाना चाहिए। यह युग भारत के चहुमुखी विकास का युग है। डॉ॰ शर्मा इस युग की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में लिखते हैं कि, "16–17वीं सदियाँ हिन्दी प्रदेष के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। हिन्दी प्रदेष के आन्तरिक गठन के विचार से इस युग की तुलना मौर्य और गुप्त युगों से की जा सकती है। **स्थापत्य, संगीत और साहित्य के चौमुखी विकास के लिए इस युग की तुलना इग्लैंड और इटली के पुनर्जागरण काल से भी की जा सकती है। उद्योग और व्यापार के विकास के विचार से इस समय का हिन्दी–प्रदेष यूरोप के किसी भी देष से पीछे नहीं था।** ध्यान देने की बात है कि संसार के दो सबसे बड़े व्यापारिक केन्द्र–दिल्ली और आगरा–हिन्दी प्रदेष में थे। विष्व संस्कृति में हिन्दी प्रदेष के अवदान के लिए **तुलसीदास, ताजमहल,** और **तानसेन** ये तीन नाम लेना काफी है।"[9] **डॉ॰ शर्मा के मतानुसार किसी युग में कलाओं का विकास उस युग के सम्पूर्ण विकास का प्रतिमान है क्योंकि आर्थिक और वैज्ञानिक उन्नति के बाद ही कलाओं का विकास सम्भव हो पाता है। साहित्य के इतिहास में कलात्मक उत्कर्ष के युगों की पहचान होनी चाहिए। भारत में मुगल काल कलात्मक उत्कर्ष का काल है।** वे मानते हैं कि, "भारत में नवजागरण की समस्याएँ साहित्य तक सीमित नहीं हैं, उनकी परिधि में दर्षन, विज्ञान, प्रौद्योगिक तथा स्थापत्य, षिल्प, चित्र, नृत्य, संगीत आदि ललित कलाएँ भी आती हैं।"[10] यहाँ डॉ॰ शर्मा की साहित्येतिहास दृष्टि का वैषिष्ट्य द्रष्टव्य है। जिसके तहत वे साहित्य और कलाओं का अध्ययन एक साथ करने का प्रस्ताव करते हैं।

डॉ॰ शर्मा साहित्येतिहास के साथ–साथ संगीत के इतिहास की समझ को उपयोगी मानते हैं। इस युग में संगीत के विकास और साहित्य से उसके सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि, "सोलहवीं–सत्रहवीं सदियों में जैसा भव्य सौन्दर्य स्थापत्य में देखा जाता है, वैसा ही उदात्त सौन्दर्य ध्रुवपद की गायकी में है। . . .संगीतषास्त्र का इतिहास संतों की संगीत साधना के बिना नहीं समझा जा सकता। . . .भारत में अंग्रेजी राज कायम होने पर साहित्य में नया युग शुरू हुआ, इस स्थापना का झूठ सच परखने के लिए संगीत की स्थिति पर विचार करना चाहिए।"[11] **अतः स्पष्ट है कि यह युग बहुमुखी उत्कृष्टता का युग था इसलिए इस युग में ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ जिसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है।**

यूरोपीय और अधिकांष भारतीय इतिहासकार इस युग को मध्यकाल एवं लगभग इसी समय और ऐसी ही परिस्थितियों के युग को यूरोप में पुनजार्गरण काल कहा जाता है। डॉ॰ रामविलास शर्मा को यह स्थापना स्वीकार नहीं है। वे अनेक दृष्टियों से इस युग को यूरोप से भी श्रेष्ठ मानते हैं। वे लोक भाषाओं के विकास को आधुनिकता का लक्षण मानते हैं। स्थिति यह थी कि, "यूरोप में लोकभाषाएँ अभी पूरी तरह सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में अपना अधिकार प्राप्त न कर सकीं थी।. . . भारत में अवधी, ब्रजभाषा तथा अन्य भाषाओं में जो विपुल साहित्य रचा गया, वह इस बात का प्रमाण है कि फारसी के राजभाषा रहते हुए भी यहाँ की लोकभाषाओं को विकसित होने का पूरा अवसर प्राप्त था।"[12]

"यहाँ का प्रधान शासक अकबर धार्मिक विषयों पर अपने स्वतंत्र चिंतन के कारण समकालीन यूरोप के किसी भी शासक से बहुत आगे था। धार्मिक भेदभाव व अंधविष्वास भी यूरोप में भारत से ज्यादा थे।"[13] "विसेंट स्मिथ ने अकबर के साम्राज्य को संसार का सबसे धनी और षक्तिषाली सम्राट बताया था।"[14] "सन् 1550 से 1650 तक यूरोपीय पुनर्जागरण काल है जिसमें वहाँ **'एंजेलो'** जैसे षिल्पी और चित्रकार तथा शेक्सपीयर जैसे कवि और नाटककार हुए थे तो उसी समय भारत में भी साहित्य, संगीत और स्थापत्य में महान उपलब्धियाँ देखी जा सकती हैं। भारत में यूरोप से अधिक विकसित व्यापारिक पूँजीवाद था इसलिए यूरोपीय व्यापारी माल खरीदने आते थे।"[15] डॉ॰ शर्मा का निष्कर्ष है कि, "जिसे इतिहासकार मध्यकाल कहते हैं, वह इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी या इटली के समकालीन कलात्मक विकास से घटकर नहीं है। . . .जैसे शेक्सपीयर का समय अंग्रेज जाति के अभ्युदय और उत्थान का समय है, वैसे ही तुलसीदास और सूरदास का समय हिन्दी जाति के उत्कर्ष का समय है।"[16] यहाँ डॉ॰ शर्मा का राष्ट्रीय गर्व द्रष्टव्य है जो उनकी राष्ट्रीयता का प्रमुख घटक हैं।

;पपद्ध जातीयता का विकास

जब "**जातीय प्रदेष, जातीय भाषा, जातीय संस्कृति** की धारणाएँ स्पष्ट नहीं होती, तब इतिहासकार मजहब और नस्ल की बातें करते हैं।"[17] डॉ॰ रामविलास शर्मा मुगल शासन को हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति की दृष्टि से न देखकर जातीय विकास की दृष्टि से देखते हैं। यह उनकी इतिहास और साहित्येतिहास दृष्टि का वैषिष्ट्य है। वे मुगल शासन के दौरान जातीय विकास के सकारात्मक पक्षों को उजागर करते हैं। वे मानते हैं कि, "सामंती अवषेषों से संघर्ष किये बिना आधुनिक युग की शुरुआत न हो सकती थी। . . . इनके खात्मे की शुरूआत बारहवीं–तेरहवीं सदियों में हो चुकी थी।"[18] "किन्तु अकबर के समय में सामंतवाद

जितना कमजोर हुआ, उतना उससे पहले की तीन–चार शताब्दियों में न हुआ था।"[19] अतः हमें अकबर को मुसलमान कहकर भारत में आधुनिक या जातीय विकास के श्रेय से वंचित नहीं करना चाहिए। सामंतवाद के विघटन और जातीय विकास के परिणाम स्वरूप जनपदीय भाषाओं का अन्तर्जनपदीय स्वरूप एवं हिन्दी का अखिल भारतीय स्तर पर प्रसार सम्भव हो सका था। इस सम्बन्ध में डॉ॰ शर्मा की स्पष्ट मान्यता है कि, "राजाओं और पुरोहितों ने संस्कृत, प्राकृत को संरक्षण दिया। बोलचाल की भाषाओं को संरक्षण मिला संतों और कवियों से।"[20] संतों की रचनाओं में काव्य और संगीत का अद्‌भुत समन्वय था जिससे न केवल समाज सुधार को बल मिला बल्कि अन्तर्जनपदीय भाषाओं के प्रसार से जातीय एकता स्थापित करने में मदद मिली थी। डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, "जितना ही व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के विकास के साथ हिन्दी प्रदेष के जनपद परस्पर सम्बन्ध हुए, उतना ही हिन्दी का प्रसार इस प्रदेष से बाहर हुआ। . . .हिन्दी प्रदेष में **जातीयता का विकास** और अखिल भारतीय स्तर पर **राष्ट्रीयता का विकास** ये दोनों चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं और दोनों का ही माध्यम हिन्दी है।"[21]

मुगल काल में हिन्दू–मुस्लिम टकराव तस्वीर का एक ही पहलू है। इस तस्वीर का दूसरा पहलू है हिन्दी–मुसलमानों का एक ही जातीयता के अन्तर्गत विकास और आपसी भाईचारा। "जहाँ मुसलमानों का राजनीतिक गढ़ था, वहीं इस्लाम का प्रसार सबसे कम हुआ। . . .तलवार के बल पर इस्लाम फैलाने वाली बात पर फिर से विचार करना आवष्यक है। . . .व्यापार का प्रसार, उसके साथ जातीयता का विकास इन्हीं दो चीजों से यह सम्भव हुआ कि तुर्क अपना तुर्कपन खोकर यहाँ की जातियों में घुलमिल गए। राज्यसत्ता हाथ में होने पर भी भारत में कहीं भी तुर्की भाषा बोलने वाले न रह गए। इसका कारण यही जातीयता का विकास है।"[22] वास्तविक स्थिति तो यह थी कि, "इस समय मुलसमान विद्वान भी संस्कृत का अध्ययन करते थे, बहुत से तुर्क और पठान हिन्दी जानते थे और बोलते थे, उनका धर्म इस्लाम था, किन्तु भाषा और संस्कृति में वे हिन्दुस्तानी थे।" यह आपसी तालमेल संगीत के स्तर और अधिक दिखाई देता है। "जिसे हिन्दुस्तानी संगीत कहते हैं, वह हिन्दी भाषा जनता का जातीय संगीत है। . . .संगीत की बंदिषें ब्रजभाषा में हैं। इन्हें हिन्दू–मुसलमान दोनों गाते थे। तथाकथित मुष्तकी जबान उर्दू का कहीं पता न था। . . .हिन्दुस्तानी संगीत में मुसलमानों का योगदान महत्वपूर्ण था।"[23] अर्थात् हिन्दी–मुसलमान एक ही जाति के अंग थे। यहाँ हम डॉ॰ शर्मा की जातीयता का एक स्रोत देख सकते हैं।

हमें यह नहीं समझना चाहिए कि डॉ॰ शर्मा मुगल षासन के नकारात्मक पक्षों को नहीं जानते हैं। वे साफ कहते हैं कि, "अकबर से पहले तुर्क मूलतः लुटेरे थे। अकबर व्यवस्थित साम्राज्य का निर्माता था।

. . .पर इस साम्राज्य को स्थापित करने में बहुत बड़े पैमाने पर रक्तपात भी हुआ।" इस युग में संघर्ष भी दोहरे स्तर पर चल रहा था। पहला स्तर था सामंत और किसान के मध्य तथा दूसरा स्तर था राज सत्ताओं का संघर्ष। "हमने मध्यकाल के जिन सुनहले सपनों की कल्पना कर रखी है, वे वास्तविकता की भूमि पर चूर हो जाते हैं।"[24] हिन्दू–मुस्लिम राज्यसत्ता और औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के कारण इस संघर्ष पर पर्दा पड़ा रहा।

यहाँ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भारत का चहुँमुखी विकास भले ही मुगल काल में हो रहा था लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मुगल साम्राज्य या अकबर का शासन नहीं होता तो भारत का विकास ही नहीं होता। वास्तविकता तो यह है कि यह विकास भारत के पहले से होते रहे विकास का परिणाम है। डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, "बहुत से सामंत बड़ी वीरता से अकबर के विरुद्ध लड़े। यदि वे जीत जाते तो भारत का आर्थिक विकास अवरूद्ध हो जाता, यह सोचने का कोई कारण नहीं है। गुजरात जैसे प्रदेष पर जब अकबर ने आक्रमण किया, तब वह पहले से ही बहुत समृद्ध था। उत्तर भारत का विकास आन्तरिक कारणों से हो रहा था। उस विकास में अकबर ने सहयोग किया। उसे जन्म न दिया था।"[25]

;पपपद्ध धार्मिक कट्टरता और बर्बादी

डॉ॰ रामविलास शर्मा ने शाहजहाँ के बाद औरंगजेब और दारा के सत्ता संघर्ष को दो संस्कृतियों की टक्कर कहा है जिसमें औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता, निरंकुषता और छल–कपट की जीत होती है। औरंगजेब के अत्याचार और धार्मिक कट्टरता के कारण उसके शासन का नाष उसके जीवन काल में ही हो गया था। इसके बाद भारत में जातीय विद्रोह के कारण केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो गई। वे इससे षिक्षा लेने की सलाह देते हैं कि, "औरंगजेब ने अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ के साम्राज्य का विस्तार किया पर यह विषाल साम्राज्य औरंगजेब के जीवनकाल में ही विघटित होने लगा था। मजहब के आधार पर साम्राज्य को टिकाऊ बनाने की कोषिष बेकार हो रही थी। 17वीं सदी में औरंगजेब के सामाज्य का विघटन 20वीं सदी के पाकिस्तानी और भारतीय सम्प्रदायवादियों के लिए बहुत षिक्षाप्रद है।"[26]

अकबर और उसके बाद के शासकों के शासन काल में भारत का आर्थिक ढाँचा इतना मजबूत बना हुआ था कि औरंगजेब के शासन की राजनैतिक अव्यवस्था के बाद भी, "ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति के पहले दौर तक भारत विष्व व्यापार की धुरी बना हुआ था।"[27] "उस वक्त ब्रिटेन के व्यापारी उत्पादन से

ज्यादा समुद्री जलमार्गों पर लूटमार के जरिए धन कमाने में विष्वास करते थे। अंग्रेजों ने समुद्री लूट और बेईमान सामंतों की लूट के बल पर भारतीय अर्थतंत्र को तबाह किया।"[28]

मुगल सत्ता के चरमोत्कर्ष और विघटन के अध्ययन के बाद डॉ॰ रामविलास शर्मा मानते हैं कि किसी शक्तिषाली और स्थायी साम्राज्य के लिए महान जनता का होना आवष्यक है। जनता की महानता तब मानी जायेगी जब वह राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि माने, बिना किसी रूकावट के ज्ञान प्राप्ति के लिए तत्पर रहे। **इसके लिए जनता में एकता, समभाव, जातीयता के साथ–साथ देष की श्रमिक जनता के प्रति सहानुभूति होना आवष्यक है।** ऐसी अवस्था में आर्थिक विकास के साथ–साथ कला और साहित्य का भी विकास होता है। भारत और हिन्दी प्रदेष का भक्तिकाल कुछ ऐसी ही परिस्थितियों का परिणाम कहा जा सकता है जहाँ सम्पूर्ण कलाएँ अपने पूर्ण वैभव पर देखी जा सकती है। साथ ही धार्मिक कट्टरता के कारण जातीय विघटन की स्थिति भी यहाँ द्रष्टव्य है।

;पअद्व भक्ति आन्दोलन की दार्षनिक पृष्ठ भूमि

□□भक्ति का स्रोत ग्रंथ – अधिकांष विद्वान भक्ति के स्रोत ग्रंथ के रूप में भागवत, महाभारत (गीता) तथा पुराण ग्रंथों को स्वीकार करते हैं तथा यह भी कि भक्ति का उदय पहले दक्षिण भारत में हुआ और उसके बाद उसका विकास उत्तर भारत में हुआ।

भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।
प्रकट कियो कबीर ने, सप्त द्वीप नवखंड।।

भक्ति के उदय के सम्बन्ध में भागवत की यह पंक्ति भी प्रामाणिक मानी जाती है कि, "मैं द्रविड़ महाराष्ट्र में सम्मानित हुई किन्तु गुजरात में मुझको बुढ़ापे ने आ घेरा।"[29] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी यही माना है कि, "भक्ति का जो स्रोत दक्षिण की ओर से धीरे–धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से चला आ रहा था उसे राजनैतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।"[30]

डॉ॰ रामविलास शर्मा भागवत, महाभारत या पुराणों को भक्ति साहित्य का स्रोत ग्रंथ स्वीकार नहीं करते हैं। इसके अलावा वे इस बात से भी सहमत नहीं है कि भक्ति का उदय दक्षिण से हुआ था। उनकी दृष्टि में भक्ति का आदि स्रोत ग्रंथ **'ऋग्वेद'** है तथा उसकी रचना उत्तर भारत में हुई थी। उत्तर

और दक्षिण का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही था इसलिए उत्तर दक्षिण के मध्य विचारों का आदान–प्रदान होना स्वाभाविक प्रक्रिया है।

इस सम्बन्ध में डॉ॰ रामविलास शर्मा का मत है कि, "उत्तरकालीन भारतीयज साहित्य को ध्यान में रखते हुए यह बात सही हो सकती है। किन्तु प्राचीन साहित्य पर ध्यान दें तो भक्ति उतनी ही पुरानी है जितना ऋग्वेद है। ऋग्वेद में अनेक प्रकार के दार्षनिक विचारों का समावेष है, उसमें अनेक प्रकार का काव्योत्कर्ष है। इनके साथ उसमें एक शक्तिषाली धारा भक्ति की भी है।"[31] वे मानते हैं कि ऋग्वेद में पाप–बोध, मुक्ति कामना, नैतिक आचरण की शुद्धता, शरणागत भाव, इष्ट देव से आत्मीय सम्बन्ध तथा देवता का अनुग्रह आदि भक्ति के अनेक पक्ष उद्‌घाटित हुए हैं।

कुछ विद्वान विषेषकर पष्चिमी विद्वान भारतीय भक्ति आन्दोलन को ईसाइयत से प्रभावित मानते हैं। डॉ॰ शर्मा कहते हैं कि, "भक्ति की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है। आधुनिक भाषाओं में जिस भक्ति साहित्य का विकास हुआ उस पर ईसाइयत का प्रभाव नहीं है। उसमें और ईसाई भक्ति साहित्य में अनेक समानताएँ अवष्य हैं।. . . प्राचीन अभिलेखों से भारतीय आर्य सामंतों का अस्तित्व पष्चिमी एषिया में प्रमाणित है, इसलिए यह निष्कर्ष तर्कसंगत है कि ऋग्वेद और बाइबिल के पुराने अंष में जो समानताएँ दिखाई देती हैं, वे वैदिक संस्कृति के माध्यम से उत्तरकालीन ईसाई भक्ति में भी चलीं आयीं हैं।"[32] स्पष्ट है कि वे भक्ति की प्राचीनता, भारतीय उपज और यूरोप से श्रेष्ठता की बात पर अटल है।

इस सम्बन्ध में उनका निष्कर्ष है कि, **"ऋग्वेद भक्ति का स्रोत ग्रंथ है। वह दर्षन का भी स्रोत ग्रंथ है। ऋग्वेद के अधिकांष कवि भक्त हैं और दार्षनिक भी हैं।** . . .ऋग्वेद में भारतीय दर्षन की दो मुख्य धाराएँ बीज रूप में विद्यमान हैं। एक सांख्य दूसरी वैषेषिक दर्षन की धारा 1 भक्ति और काव्य के अलावा भारत में जो ज्ञान विज्ञान का विकास हुआ, उसका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध इन दो धाराओं से है।"[33]

स्पष्ट है कि उनके मतानुसार भक्ति का उद्‌भव हमें ऋग्वेद से स्वीकार करना चाहिए तथा बाद में आखिल भारतीय स्तर पर उसके फैलाव तथा विभिन्न युगों में युगानुरूप परिवर्तनों को उसके विकास की मंजिलें मानना चाहिए।

□□विभिन्न सम्प्रदायों में सम्बन्ध – दुनिया में कोई सिद्धान्त, या सम्प्रदाय अचानक प्रकट नहीं होता बल्कि उसके पीछे एक पुष्ट परम्परा निहित होती है। यह प्रष्न अलग है कि कोई सिद्धान्त या मत पूर्व परम्परा का परिष्कार करता है या उसका निषेध। भक्ति के विकास को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। डॉ॰

रामविलास शर्मा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस मत से सहमत नहीं हैं कि भक्ति आन्दोलन तंत्रवाद, सिद्ध, बौद्ध या योग आदि सम्प्रदायों का सार लेकर विकसित हुआ है। वे तो मानते हैं कि भक्ति आन्दोलन ने इनसे बहुत कुछ ग्रहण किया है लेकिन यह मूलतः इनके निषेध पर विकसित हुआ है।"[34]

"तंत्रवाद सामाजिक विकास की प्रारम्भिक स्थिति की उपज है क्योंकि इसमें नारी की महत्ता के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि यह नारी प्रधान समाज की उपज है जो कि पुरुष प्रधान समाज से पूर्व की अवस्था है। पुरुष प्रधान समाज होने पर शक्ति की देवी को देव ने अपदस्थ कर दिया तब उसमें मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पंच मकारों का व्यापक चलन हुआ। बौद्धमत और शैव मत दोनों तंत्रवाद से सम्बन्ध थे। वैष्णव मत तंत्रवाद शाक्त और शैव मतों को हटा रहा था।"[35]

उनका मत है कि, "बौद्ध मत, शाक्त मत, शैव मत का सम्बन्ध तंत्रवाद से तथा तंत्रवाद का सम्बन्ध वामाचारी साधना से था। धर्म और दर्षन में तंत्रवाद और वामाचार, स्थापत्य में वीभत्स और विलासमयी प्रस्तर मूर्तियाँ, साहित्य में रीतिवादी नायिका भेद और रूढ़िग्रस्त श्रृंगार का सम्बन्ध समाज के सामंत और उनके सहायक वामाचारी पुरोहित समुदाय से था। संत कवियों ने इस वामाचारी धर्म को अपदस्थ कर लोकधर्म की स्थापना की।"[36] कुछ लोग भक्तिकाल को सगुण और निर्गुण विवाद के रूप में देखना पसन्द करते हैं जबकि वे, "भक्तिकाल में मुख्य अन्तर्विरोध सगुण और निर्गुण पंथों का नहीं न मानकर, मुख्य अन्तर्विरोध भक्तों और योगियों–तांत्रिकों के मध्य मानते हैं।"[37] "भक्ति में परकीया प्रेम के माध्यम से कामषास्त्र विलास और रीतिवाद के प्रवेष का विरोध करते हैं।"[38]

;अद्ध भक्ति आन्दोलन और योगियों की भूमिका

भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में जैन सिद्ध व नाथ सम्प्रदायों की भूमिका को अनेक साहित्येतिहासकारों ने स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल इनकी रचनाओं को धार्मिक कहकर हिन्दी साहित्य से बाहर रखना चाहते हैं तो आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इन्हें हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण भाग मानते हैं। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने **'भक्ति आन्दोलन में योगियों की भूमिका'** को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है। वे इस परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि, "योगियों की कथाएँ, योगी कवियों की परम्परा लोक संस्कृति का अंग बन गई थी।. . . बौद्ध, सिद्धों और योगी कवियों के चिंतन में कुछ बातें सामान्य हैं और कुछ बातों में मौलिक भिन्नता है। इसी तरह योगियों के बाद जो भक्त या संत कवि आते हैं वे अषंतः योग का निषेध करते हैं और अषंतः उसे स्वीकार करते हैं।"[39]

कुछ लोग भक्ति आन्दोलन के मूल में ईसाइत और इस्लाम के प्रसार को मानते हैं लेकिन डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, "प्रभाकर माचवे ने इस धारणा का खंडन किया है। उन्होंने उचित ही तमिलनाडु के शैव संतों का उल्लेख करते हुए यहाँ की अद्वैतवादी परम्परा का उल्लेख किया है।"[40] स्पष्ट है कि वे भक्ति आन्दोलन के स्रोत भारत के अन्दर ही देखते हैं।

हिन्दी विद्वानों में निर्गुण भक्ति के प्रवर्तक को लेकर भी मतभेद है। अधिकांष विद्वान **'कबीर'** को तथा विनयमोहन शर्मा **'नामदेव'** को उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्तक मानते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ॰ शर्मा का मत है कि, "नामदेव और कबीर दोनों से पहले हैं **गुरु गोरखनाथ**। उन्हें निर्गुण पंथ का प्रचारक कहा जाए या नहीं?. . . परम सत्ता अगम अगोचर है। यह अरूप है, अनाम भी है। इस दृष्टि से शंकराचार्य को निर्गुण पंथ का आदि गोरखनाथ में अन्तर है। जहाँ शंकराचार्य जगत को असत्य मानते हैं वहीं गोरखनाथ जगत को सत्य मानते हैं और किसी न किसी रूप में सभी संत संसार का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।"[41]

□□**निर्गुण पंथ–प्रवर्तक गोरखनाथ –** हिन्दी के विद्वानों में निर्गुण पंथ के प्रवर्तक को लेकर मतभेद हैं। अधिकांष **गोरखनाथ** ने कोई नया पंथ न चलाकर अद्वैतवाद का ही प्रचार किया। **उनका प्रभाव** न केवल अखिल भारतीय स्तर पर था बल्कि अन्य देषों में भी व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। इनके मठ–मन्दिर लंका व नेपाल में भी देखे जा सकते हैं। "गोरखनाथ का प्रचार क्षेत्र बंगाल, बिहार और नेपाल ही बना रहा, पर इनके षिष्य गैनीनाथ और गैनीनाथ के षिष्य निवृत्तिनाथ के जीवन का अधिकांष भाग महाराष्ट्र में ही व्यतीत हुआ। ज्ञानेष्वर निवृत्तिनाथ के षिष्य थे।. . . ज्ञानेष्वर का यही अद्वैतवाद संत नामदेव के समय पंढ़रपुर का **'भागवत धर्म'** अथवा कुछ परिवर्तन के साथ **'वारकरी पंथ'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिन्दी प्रदेष के बाहर दूर–दूर तक गोरखनाथ का प्रभाव था।"[42]

भक्ति आन्दोलन ने गोरखनाथ की एकांत साधना, गृहस्थ व स्त्री विरोध की बात का परित्याग कर अधिकांष बातें स्वीकार अपना विकास किया। इस सम्बन्ध में डॉ॰ शर्मा का आकलन है कि, "गोरख ने सिद्धों की विचारधारा का यदि 10 प्रतिषत अंष ग्रहण किया तो 90 प्रतिषत अंष छोड़ा। भक्तों ने गोरख की विचारधारा का 10 प्रतिषत अंष छोड़ा तो 90 प्रतिषत अंष ग्रहण किया। गोरख के बाद नवजागरण की अगली कड़ी में भक्त ही हैं।"[43]

□□योग और भक्ति – योग से भक्ति के विकास को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ शर्मा कहते हैं कि, "गोरखनाथ में भी प्रेमतत्व के बीज थे लेकिन वे अंकुरित नहीं हो सके। जब योगियों के अद्वैतवाद में प्रेमतत्व जोड़ा गया तब भक्ति का विकास हुआ। . . .विनय मोहन शर्मा के अनुसार यह प्रेम तत्व तमिल आलवार संतों से प्राप्त होने पर महाराष्ट्र और हिन्दी प्रदेष में भक्ति आन्दोलन का प्रसार हुआ। यह धारा आलवार संत राघवानन्द और रामानन्द से होकर कबीर तक पहुँचती है।"[44]

भक्तों द्वारा अधिकांष बातें योगियों से ग्रहण करने के बावजूद सच्चाई यह है कि, "देष में योगियों का व्यापक प्रभाव था, इसके विरुद्ध भक्तों ने दीर्घकाल तक संघर्ष किया जो साहित्य में योग और भक्ति के संघर्ष के रूप में उपस्थित है, कबीर–सूर– तुलसी (मीरा भी) की रचनाएँ इसका प्रमाण हैं, और अन्ततः भक्तों ने ही योगियों को अपदस्थ कर अपना देषव्यापी प्रसार किया जिसे हम भक्ति आन्दोलन के रूप में जानते हैं। यह समृद्ध भक्ति साहित्य अपनी श्रेष्ठता और महाकवियों के लिए सदैव याद किया जायेगा। उसी आन्दोलन की अनुपम उपलब्धि है। हिन्दी का भक्ति साहित्य और अनेक महाकवि।"[45]

वैष्णव भक्ति आन्दोलन से पूर्व भारत में धर्म, दर्षन और साधना दीर्घ और वैविध्य पूर्ण परम्परा उपस्थित है। वैष्णव भक्ति आन्दोलन ऐतिहासिक अनुभव और तत्कालीन सामाजिक विकास की अवस्था के आधार पर एक परिष्कृत साधना मार्ग था। वास्तविकता तो यह है कि, "संत साहित्य भारतीय जीवन की अपनी परिस्थितियों से पैदा हुआ था। उसका स्रोत बौद्ध धर्म या इस्लाम में या हिन्दू धर्म में ढूँढना सही नहीं है। इन धर्मों का उस पर असर है लेकिन ये उसके मूल स्रोत नहीं है। . . .संत साहित्य की अपनी विषेषताएँ हैं जो मूलतः किसी प्राचीन धर्मग्रंथ पर निर्भर नहीं है।"[46] यही कारण है कि, "संत कवियों का एक सुसंगत दार्षनिक दृष्टिकोण नहीं हैं। उस दृष्टिकोण में असंगतियाँ हैं। एक ओर ये कवि संसार को मिथ्या, ब्रह्म या परलोक को एक मात्र सत्य कहते दिखाई देंगे, दूसरी ओर वे प्रकृति, सामाजिक जीवन और मानव सम्बन्धों के प्रति गहरी आसक्ति प्रकट करते दिखायी देंगे। इस असंगति का पहला कारण है वर्ग युक्त समाज में शासक वर्ग के दर्षन का प्रभाव है। . . .मध्यकालीन साहित्य पर भाग्यवाद, मायावाद, निष्क्रियता आदि भावनाओं का असर–इसका ऐतिहासिक कारण है, उस समय के जन जीवन की सीमाएँ हैं।"[47] अतः स्पष्ट है कि डॉ॰ शर्मा भक्ति आन्दोलन के दार्षनिक आधारों को महत्व न देकर सामाजिक आधारों को महत्वपूर्ण मानते हैं।

;अपद्ध भक्ति आन्दोलन का सामाजिक आधार

डॉ॰ रामविलास शर्मा भक्ति आन्दोलन को न तो किसी अन्य धर्म की प्रतिक्रिया मानते हैं, न उसे निराष मन की पुकार मानते हैं, न उसे हिन्दू संस्कृति का आत्मरक्षा कर प्रयास मानते हैं और न उसे उच्च और निम्न जातियों का अलग–अलग आन्दोलन मानते हैं बल्कि वे उसे भारतीय सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हैं। वे लिखते हैं कि, "एक बार बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में ब्राह्मण धर्म पुनर्जीवित हुआ, दूसरी बार इस्लाम की प्रतिक्रिया के रूप में वह पुनर्जीवित हुआ। दो युगों में इस तरह ब्राह्मण धर्म या हिन्दू धर्म के पुनर्जीवित होने की यह धारणा गलत है। गुप्त काल, भक्तिकाल तथा आलवार संतों का युग व्यापारिक समृद्धि का काल है। व्यापार की प्रगति से पुराने सामाजिक सम्बन्ध षिथिल होते हैं, सामाजिक सम्बन्धों की षिथिलता से भक्ति साहित्य का सीधा सम्बन्ध है।"[48] भक्ति आन्दोलन मुगल शासन की निराषाजन्य परिस्थितियों की उपज नहीं है क्योंकि, "यह तुर्क आक्रमणों से पहले का है। गुप्त सम्राटों के युग में ही वैष्णव मत का प्रसार होता है, तमिलनाडू भक्ति आन्दोलन का केन्द्र रहा, जहाँ मुसलमानों का शासन न था। स्वयं अनेक मुस्लिम संतों ने इस आन्दोलन में योग दिया।"[49]

"भारत में दीर्घकाल से राज्य पर सामंतों, धर्म पर शास्त्रों, समाज पर वर्ण व्यवस्था तथा साहित्य पर संस्कृत का कठोर नियंत्रण था, लेकिन तेरहवीं सदी के आस–पास इस स्थिति में अन्तर्जनपदीय व्यवहार के अलगाव, व्यापार के विकास तथा आधुनिक भाषाओं के प्रसार से गुणात्मक परिवर्तन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप सारे देष में शक्तिषाली भक्ति आन्दोलन फैल गया। इस आन्दोलन में शूद्र, मुसलमान और स्त्रियों की भागीदारी विषेष उल्लेखनीय है।"[50] स्पष्ट है कि भक्ति आन्दोलन का आधार धार्मिक–दार्षनिक परिस्थितियाँ नहीं बल्कि सामाजिक परिस्थितियाँ थीं। डॉ॰ शर्मा दृढ़ता से कहते हैं कि, "भारतीय जीवन की जिस परिस्थिति से संत साहित्य का धनिष्ठ सम्बन्ध है, वह है सामंती समाज का ह्रास, सामंती ढाँचे का कमजोर पड़ना। . . .यह परिवर्तन उसकी अपनी ही शक्तियों से हो रहा था। . . .उसे समाप्त करने वाली शक्तियाँ उसी के गर्भ में पुष्ट हो रहीं थी। ये शक्तियाँ व्यापारियों, जुलाहों, कारीगरों, गरीब किसानों की थीं जिनके सांस्कृतिक विकास और सुखी जीवन में सबसे बड़ी बाधा थी–सामंतवाद।"[51] भक्ति आन्दोलन और भक्ति साहित्य में शोषित और पीड़ित वर्ग को उत्साह पूर्ण भागीदारी तथा सामंती मूल्यों को ध्वस्त करने की आकांक्षा थी यह डॉ॰ शर्मा के मत का विष्वसनीय और ठोस प्रमाण है।

"साहित्य चाहे यूनान और रोम का हो, चाहे पुनर्जागरण के इटली और इंग्लैण्ड का, उसके अधिकांष पर अभिजात वर्ग की छाप है। वाल्मीकि और व्यास जैसे कवि यूरूप में नहीं हुए, न जायसी,

कबीर, सूरदास और तुलसीदास जैसे कवि वहाँ हुए। भक्ति काव्य का यह लोकवादी स्वरूप संसार में अद्वितीय है।"[52] भारत में इस लोकवादी स्वरूप का ठोस सामाजिक आधार था। "संत कवि चाहे वैष्णव हो, चाहे शैव हो, उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने जाति विरादरी के बन्धन ढीले किए। उनके आन्दोलन में **द्विज** और **शूद्र** दोनों आए।"[53] कुछ विद्वान भक्ति साहित्य के इस लोकवादी स्वरूप की उपेक्षा कर उसे धर्म और जातियों के आधार पर मूल्यांकित करते हैं। डॉ॰ शर्मा इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। वे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर आरोप लगाते हैं कि, "जाति–पाति को आधार मानकर द्विवेदी जी ने जो समाजषास्त्र रचा है, उससे भारत के युगान्तकारी भक्ति आन्दोलन का महत्व समझने में जरा भी सहायता नहीं मिलती। उन्होंने सगुण को निर्गुण से अलग किया, निर्गुण में ऊँची जाति के नानक को नीची जाति के कबीर से अलग किया, सगुण में कृष्ण के भक्तों को राम के भक्तों से अलग किया। मलिक मुहम्मद जायसी इन सबसे दूर कुतुबन मंझन के साथ एक पंक्ति में अलग खड़े रहे।"[54] स्पष्ट है कि वे साहित्य की जातिगत व्याख्या के विरुद्ध हैं क्योंकि इससे सामाजिक साहित्यिक और ऐतिहासिक सत्य हाथ न लगेगा। संतों और कवियों की जातिगत व्याख्या का विरोध करते हुए लिखते हैं कि, "रामानन्द के चिन्तन की व्याख्या उनके उच्चकुल में उत्पन्न होने से नहीं होती, उसकी व्याख्या नये सामाजिक सम्बन्धों से होती है, पुराने वर्णों की विघटन प्रक्रिया से होती है, समाज में व्यापक गरीबी–अमीरी के भेद से होती है।"[55] वे शुक्ल का अंषतः समर्थन करते हुए कहते हैं कि, "भक्ति अपने सीमित अर्थ में निराषा मन की पुकार है। यह **'दुःख में सुमिरन सब करें'** वाला भाव है। यह दुःख सामंती उत्पीड़न का दुःख है। परिणामस्वरूप यह भक्ति उत्तर भारत, दक्षिण भारत तथा यूरोप में समान रूप से मिलती है। लेकिन अपने व्यापक अर्थ में भक्ति पीड़ित जनता का विद्रोह भी है, उल्लास और सुखी जीवन की आकांक्षा की अभिव्यक्ति भी है।"[56] "यह सम्पत्तिषाली वर्गों का सांस्कृतिक आन्दोलन न था। . . .आधुनिक शब्दावली में कहें तो कह सकते हैं कि भक्ति– आन्दोलन मध्यकालीन समाज व्यवस्था में जनता का सामंत विरोधी सांस्कृतिक आन्दोलन था। . . .इस आन्दोलन में भक्त कवियों की बाढ़ आ गई जिनमें हिन्दू, मुसलमान, सवर्ण और अछूत सभी तरह के लोग हुए। यह सामंती विघटन और व्यापारिक पूँजीवाद के सहारे निर्मित जातीय आन्दोलन का सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब था। वस्तुतः अपनी ऐतिहासिक आवष्यकतानुसार धार्मिक लिवास में यह एक वर्ग आन्दोलन था।"[57] अतः वे उचित ही निष्कर्ष निकालते हैं कि, "भक्ति आन्दोलन विषुद्ध देषज आन्दोलन है। वह सामंती समाज की परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था, वह मूलतः इस सामंती समाज व्यवस्था से विद्रोह का साहित्य है।"[58]

यह सत्य है कि भक्ति आन्दोलन का बाहरी आवरण धार्मिक रेषों से बुना गया है। धार्मिक आवरण को बनाये रखना उस युग की ऐतिहासिक जरूरत थी। सामंती हथियारों से ही सामंतवाद से लड़ना सुविधा जनक था। उन्होंने इस धार्मिक विषयवस्तु का उपयोग कर यह सिद्ध किया कि, "वास्तविक मोक्ष इस जीवन में है, जीवन के उपरान्त नहीं। भक्त कवियों ने प्रेम के मंत्र से कर्म के बन्धन काट दिये, पुरोहित के रचे हुए स्वर्ग और नरक के सुहावने और डरावने चित्र मिटा दिये। उन्होंने सांस्कृतिक धरोहर को लोक संस्कृति से जोड़कर उसे नया रूप दिया। उन्होंने लोकजीवन से अभिन्न रहकर साहित्य में यथार्थवाद का विकास किया।"[59] आलोचक या तो धार्मिक सामग्री को ही साध्य सामग्री मान लेते हैं अथवा मानक अछूत समझकर उसका अवमूल्यकंन करते हैं। प्रगतिषील आलोचकों की इस प्रवृत्ति का विष्लेषण करते हुए डॉ॰ शर्मा सावधान करते हैं कि, "ये लोग साहित्य और समाज के विकास क्रम में धार्मिक रूपों के अन्दर छिपी हुई ऐतिहासिक विषयवस्तु नहीं पहचानते, इसलिए धार्मिक रूपों को ही मुख्य मानकर उन पर टूट पड़ते हैं और पिछले **जनवादी लेखकों को प्रतिक्रियावादी करार दे देते हैं।** . . .ऐसा करने से हम अपनी विरासत से ही हाथ नहीं धो बैठेंगे, बल्कि उसे प्रतिक्रियावादियों को सौंपकर उनके हाथ भी मजबूत करते हैं।"[60]

अभिप्राय यह है कि धार्मिक प्रभावों की छानबीन या धार्मिक मंतव्यों के विष्लेषण में उलझकर हमें उसके सामाजिक आधार की उपेक्षा नहीं करनी है बल्कि मुख्य रूप से सामाजिक आधारों का ही विष्लेषण कर साहित्येतिहास में भक्ति साहित्य को यथोचित स्थान देना है। यहाँ डॉ॰ शर्मा की मार्क्सवादी इतिहास दृष्टि स्पष्ट देखी जा सकती है।

;अपपद्ध भक्ति आन्दोलन : अखिल भारतीय स्वरूप

हम अनेक बार उल्लेख कर चुके हैं कि डॉ॰ रामविलास शर्मा किसी भी शषा के साहित्य के इतिहास अथवा उसकी प्रवृत्तियों का **अखिल भारतीय संदर्भ** में अध्ययन करने के पक्षधर हैं, वे उनके अन्दर निहित समानताओं और असमानताओं का स्रोत **सामाजिक आधार** में खोजते हैं तथा उसकी प्राचीनता एवं स्रोतों की खोज के आधार पर **साम्राज्यवादी मानसिकता का खण्डन** कर अपनी विषिष्ट और किसी हद तक सर्वांगपूर्ण साहित्येतिहास दृष्टि का प्रतिपादन करते हैं। भक्ति आन्दोलन के सदर्भ में भी उपर्युक्त बातें अक्षरषः सत्य हैं।

□□तमिल भक्ति आन्दोलन : मन्दिरों के मध्य – आधुनिक भारतीय भाषाओं से सबसे पहले चारण काव्य और उसके बाद भक्तिकाव्य का विकास **'तमिल'** में हुआ। तमिल चारण काव्य की तरह तमिल भक्ति

काव्य में हिन्दी के भक्ति आन्दोलन से अनेक समानताएँ देखी जा सकती हैं। तेलगू भागवत के रचनाकार पोतना अनेक अत्याचार सहन करने के बावजूद न तो राज्याश्रय ग्रहण करते हैं और न अपनी कृति को राजा को समर्पित करते हैं। राजदरबार से दूरी बनाना हिन्दी संत साहित्य की आधारभूत विषेषता है। (संतन को कहा सीकरी सों काम) तमिल भक्ति साहित्य में संसार त्याग का निषेध, लोक जीवन से सम्पृक्ति, मन्दिरों में भक्ति का विकास, स्थापत्य, मूर्तिकला, गायन–वादन–नृत्य का विकास, आर्थिक विकास, जाति–बिरादरी के बन्धनों में षिथिलता, शूद्र और स्त्रियों की साहित्य में सहभागिता, वैष्णव भक्ति काव्य में अवतार, पौराणिक देव और कृष्णलीला की उपस्थिति हिन्दी भक्ति आन्दोलन से तुलनीय हैं। तमिल भक्ति आन्दोलन के भौतिकवादी और सामाजिक आधारों को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ शर्मा उसे यूरोपीय पुनर्जागरण से प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं। वे लिखते हैं कि, "इस तरह सांसारिक यथार्थ को आधार बनाकर मानव संवेदनाओं को व्यक्त करने वाला, समाज के निम्नतम जनों को सम्मान प्रदान करने वाला भक्ति साहित्य रचा गया। तमिलनाडू में भक्ति साहित्य की रचना के कई सौ वर्ष बाद जर्मनी और इंग्लैड आदि यूरोप के देषों में जब धार्मिक सुधार आन्दोलन शुरू हुआ तब एक ही धर्म के रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट एक–दूसरे की जान के गाहक बन गए।"[61] तमिलनाडू का भक्ति आन्दोलन धनिष्ठ रूप से मन्दिरों से जुड़ा हुआ था जो हिन्दी के सगुण भक्ति आन्दोलन की याद दिलाता है। इससे भक्ति आन्दोलनका अखिल भारतीय स्वरूप सिद्ध होता है। तमिल भक्ति आन्दोलन के मूल्यांकन में यहाँ राष्ट्रीयता, जातीयता व यथार्थवादी चेतना स्पष्ट देखी जा सकती है।

□□**कन्नड़ भक्ति आन्दोलन : मन्दिरों से बाहर –** उत्तर भारत में जैसे सबद और बानी है, वैसे ही कर्णाटक में वचन हैं। बारहवीं सदी के कन्नड़ वचनकारों ने मन्दिर जाकर उपासना करने, मूर्ति पूजा आदि का विरोध किया था। इस दृष्टि पहले प्रसिद्ध वचनकार अल्लम प्रभु का नाम उल्लेखनीय है। बाहरी दिखावे का विरोध, कर्मकांडों का विरोध, अन्धविष्वासों का विरोध, बहु देवोपसना का खंडन, सामाजिक ऊँच–नीच का विरोध, जीव हिंसा का विरोध, सदाचार पर जोर, सत्य भाषण पर बल, स्वर्ग–नरक का विरोध, दया को धर्म का मूल बताना अपने विरोधियों का साहस पूर्वक मुकाबला और चुनौती जैसी विषेषताएँ बसवेष्वर के काव्य में आसानी से देखी जा सकती हैं जो हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा से तुलनीय हैं। बसवेष्वर के सम्बन्ध डॉ॰ शर्मा का मत है कि, "बसवेष्वर ने जो सामाजिक रूढ़ियों की तीखी आलोचना की है उसे देखकर कबीर की याद आती है। अपने विरोधियों को चुनौती के स्वर में उन्होंने जो उत्तर दिया, उसे देखकर तुलसीदास की याद आती है – **'काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब।'** इस तुलसीदास की उक्ति का पूर्वरूप है – **'मेरे कुत्ते को लड़की मत देना आदि।'**"[62]

लगभग पन्द्रहवीं सदी के तमिल कवि 'बेमना' ने भी धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविष्वासों का खंडन किया। वे सामान्य जीवन के उपकरणों से अद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हैं, घर में पत्नी, बच्चे और धन के महत्व को स्वीकारते हैं, जातिप्रथा का विरोध करते हैं, कर्ममय जीवन को महत्व देते हैं, मोक्ष के लिए **'काम'** जैसी भावना को आवष्यक मानते हैं, तथा देवोपासना का विरोध करते हैं इसलिए डॉ॰ शर्मा कहते हैं कि, "बेमना की बहुस सी बातें कबीर की उक्तियों से मिलती है।"[63]

□□स्त्रियों के काव्य का स्वरूप – डॉ॰ रामविलास शर्मा मानते हैं कि, "तमिलनाडू की आण्डाल, कर्नाटक की अक्कमहादेवी हिन्दी प्रदेष की मीराबाई और कष्मीर की ललद्यद–इन चार कवयित्रियों पर एक साथ विचार करना उचित होगा। संत कवियों की बहुत–सी विषेषताएँ इनके साहित्य में भी हैं। उनसे भिन्न इनमें नारीतत्व की अभिव्यक्ति भी है। इस अभिव्यक्ति में कुछ बातें सामान्य हैं और कुछ देषकाल के अनुसार भिन्न है।"[64] अभिप्राय यह है कि इन स्त्री भक्तों के साहित्य को हमें तीन स्तरों पर समझना चाहिए– **पहला** भक्ति आन्दोलन का अखिल भारतीय सन्दर्भ, **दूसरा** स्त्री जीवन का सन्दर्भ और **तीसरा** है क्षेत्रीय या प्रादेषिक सन्दर्भ। अर्थात् राष्ट्रीय और जातीय संदर्भ उपस्थित है।

इनके साहित्य पर विचार करते हुए डॉ॰ शर्मा ने पाया है कि ये सभी भागवत, महाभारत, गीता आदि से परिचित रहीं हैं, भक्त कवियों की तरह ईष्वर से मुक्ति कामना करती हैं, ललद्यद में योग का प्रभाव ज्यादा है, अलौकिक ईष्वर से प्रेम करती हैं, रूप वर्णन करना अनिवार्य सा है, अपने शरीर का वर्जन भी इनका विषय रहा है, विरह वेदना चरम सीमा पर दिखाई देती है, स्त्री जीवन की विडम्बना का चित्रण मार्मिक है, क्षेत्रीय प्रभाव आसानी से पहचाने जा सकते है, गीतात्मकता प्रमुख विषेषता है, किसी सुसंगत दर्षन का अभाव है तथा लोक संस्कृति का अंग होने से इनका साहित्य अपने प्राचीन रूप में प्राप्त नहीं होता है।"[65]

यह हम कह चुके हैं कि भक्ति साहित्य तंत्रवाद का विरोधी था। योग साधना, भक्ति और तंत्रवाद के मध्य है। इसलिए, "योग और प्रेम (भक्ति) में कहीं मेल है और कहीं टक्कर है। मीराबाई ललद्यद से काफी दूर हैं और आण्डाल के बहुत पास हैं। (क्योंकि ललद्यद पर योग और आण्डाल पर प्रेम का प्रभाव अधिक है।) गोपियों की उक्तियों में इस तरह योग का विरोध सूरदास ने भी प्रदर्षित किया है। इससे जो बात प्रमाणित होती है वह यह कि हिन्दी प्रदेष में ऐसी काव्य परम्परा प्रचलित थी जो योग के स्थान पर प्रेम को प्रतिष्ठित करती थी।"[66]

डॉ॰ शर्मा इनके साहस की प्रषंसा में लिखते हैं कि, "जिस साहस और वीरता से ललद्यद और मीराबाई जैसी महिलाओं ने रूढ़िवादियों के विरोध का सामना किया, उसे देखते हुए **चारण परम्परा का वीररस फीका जान पड़ता है।**"[67]

अतः हम आसानी से कह सकते हैं कि उपर्युक्त विषेषताएँ **भारतीय भक्ति आन्दोलन के आखिल भारतीय स्वरूप को प्रमाणित करती हैं।** अखिल भारतीय स्तर पर महिलाएँ भक्ति आन्दोलन का भाग थीं, महिलाओं के प्रति समाज व्यवस्था समान रूप के कठोर थी, संत समाज भी स्त्री–पुरुष के भेद से मुक्त नहीं था तथा ये महिलाएँ अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरूक ही नहीं थी बल्कि अलौकिक प्रेम की खुले आम घोषणा कर तत्कालीन पुरुष सत्ता और सामंती सत्ता के प्रति विद्रोह कर रहीं थी। इनके भक्ति आन्दोलन में प्रवेष को धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक बन्धनों और सामंती निरकुंषता के प्रति विद्रोह के रूप में ही देखना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि ये कवयित्रियाँ अखिल भारतीय और हिन्दी भक्ति आन्दोलन का अभिन्न और महत्वपूर्ण भाग है।

□□**हिन्दी भाषा का अखिल भारतीय प्रसार** – डॉ॰ रामविलास शर्मा इस भक्ति आन्दोलन को अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकार करने के साथ–साथ यह भी मानते हैं कि इसमें **हिन्दी भाषा का भी अखिल भारतीय स्तर पर प्रसार हो रहा था।** जातीय विकास के प्रारम्भ में ब्रज–अवधि आदि जनपदीय बोलियाँ कालान्तर में अन्तर्जनपदीय भाषाएँ बन चुकी थी। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के चलते बाद हिन्दी का अखिल भारतीय स्वरूप निर्धारित होने लगा था। डॉ॰ शर्मा भक्ति आन्दोलन के अखिल भारतीय प्रसार के सम्बन्ध में ध्यान दिलाते हैं कि, "भक्ति के रूप में जिस अन्तर्जातीय संस्कृति का प्रसार हो रहा था, वह हिन्दी प्रदेष और महाराष्ट्र तक सीमित नहीं थी, वह उत्तर और दक्षिण भारत को आपस में जोड़ने वाली थी और यह प्रक्रिया काफी समय से चली आ रही थी।"[68] वे विनय मोहन शर्मा के हवाले से इस प्रक्रिया के प्रमाण स्वरूप शंकराचार्य, निम्बार्क, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य के अखिल भारतीय भ्रमण और स्वीकृति को उद्धृत करते है।

भक्ति आन्दोलन के साथ–साथ स्वाभाविक रूप से हिन्दी का प्रसार अखिल भारतीय स्तर पर हो रहा था। डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, हिन्दी का यह प्रसार पंजाब, महाराष्ट्र से लेकर शंकराचार्य के अपने प्रदेष केरल तक पहुँचा।. . . महाराष्ट्र में जिस चारण काव्य परम्परा का विकास हुआ, वह भी हिन्दी से जुड़ी हुई थी।. . . राजदरबारों से अलग हटकर लोक संस्कृति के अनेक रूपों में भी हिन्दी ने महाराष्ट्र में प्रवेष किया।"[69]

भक्ति दर्षन और साहित्य के अलावा हिन्दी जन–जीवन की आवष्यकताओं (व्यापार व राजनीति) की पूर्ति भी कर रही थी। वस्तुतः "हिन्दी का यह प्रसार राष्ट्रभाषा का प्रसार था। चौदहवीं सदी में उत्तर भारत के बहुत से लोग आन्ध्रप्रदेष में जाकर बस गये थे। वे अपने साथ हिन्दी–प्रदेष के जनपदों की भाषाएँ ले गए थे। वहाँ उन्होंने हिन्दी के दक्खिनी रूप का विकास किया। उसका ढाँचा मूलतः खड़ी बोली का था परन्तु उसमें अन्य जनपदीय भाषा तत्व भी थे और अषंतः वह मराठी से प्रभावित थी। इसी का प्रसार कर्णाटक में हुआ। जब हैदरअली और टीपू सुल्तान ने केरल पर आक्रमण किया, तब उनकी सेनाओं के साथ दक्खिनी हिन्दी ने भी केरल में प्रवेष किया।. . . आर्थिक और राजनीतिक कारणों से हिन्दी का जो प्रसार हुआ, उसके फलस्वरूप केरल में हिन्दी सिखाने के लिए कोष, व्याकरण ग्रंथ लिखे गए। . . .आषय यह कि साहित्य की दुनिया से अलग हटकर जीवन की आवष्यकताओं के अनुसार समाज के अन्य क्षेत्रों में हिन्दी का प्रसार हुआ।"[70]

आशय यह है कि डॉ॰ रामविलास शर्मा भक्ति आन्दोलन को **अखिल भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन** मानते हैं, इसके स्वरूप का विष्लेषण करते हैं, सामाजिक **आधारों की खोज** करते हैं तथा देष और साहित्य की दृष्टि से उसकी मूल्यवत्ता को स्पष्ट करते हैं। वे भक्ति आन्दोलन के सम्बन्ध में **राष्ट्रीयता की दृष्टि** से अपना व्यापक और सटीक विष्लेषण प्रस्तुत करते हैं कि, "भक्ति आन्दोलन अखिल भारतीय है। देष और काल की दृष्टि से ऐसा व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन संसार में दूसरा नहीं है। . . .भक्त कवियों ने विभिन्न प्रदेषों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधने में कितना बड़ा काम किया, उसका मूल्य आंकना सहज नहीं हैं। . . .**भक्ति आन्दोलन से जो भावात्मक एकता स्थापित हुई, उसमें जितना फैलाव था, उतनी गहराई भी थी।. . . भक्ति आन्दोलन एक ओर अखिल भारतीय आन्दोलन था, दूसरी ओर वह प्रदेषागत, जातीय आन्दोलन भी था।** देष और प्रदेष एक साथ, राष्ट्र और जाति दोनों की सांस्कृतिक धाराएँ एक साथ। **भक्ति आन्दोलन की व्यापकता और सामर्थ्य का यही रहस्य है।** जो लोग समझते हैं कि अंग्रेजों के आने से पहले यहाँ राष्ट्रीय एकता का अभाव था, उन्हें भक्ति आन्दोलन के इस अखिल भारतीय रूप पर विचार करना चाहिए।"[71]

यहाँ **हम डॉ॰ रामविलास शर्मा की साहित्येतिहास दृष्टि के राष्ट्रीय जातीय मूलाधार के स्वरूप को स्पष्ट देख सकते हैं। हम देख सकते हैं कि राष्ट्रीयता जातीय, व मार्क्सवादी व जनपक्षधरता किस तरह साहित्य के मूल्याकंन और साहित्येतिहास लेखन को दिषा दे सकती है।**

संदर्भ सूची

1 jkefoykl 'kekZ & yksd tkxj.k vkSj fgUnh lkfgR;] i`ñ 10&11

2 jkefoykl 'kekZ & yksd tkxj.k vkSj fgUnh lkfgR;] i`ñ 11

3 jkefoykl 'kekZ & yksd tkxj.k vkSj fgUnh lkfgR;] i`ñ 12

4 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 45

5 ¼i½ jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 72&78]

¼ii½ jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 145&146] 186&191

6 ¼i½ jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 72&78]

¼ii½ jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 145&146] 186&191

7 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 10

8 jkefoykl 'kekZ & yksd tkxj.k vkSj fgUnh lkfgR;] i`ñ 11

9 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 199

10 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfed] i`ñ 163

11 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 8

12 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 199

13 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 199

14 jkefoykl 'kekZ & vdcj n xzsV eqxy i`ñ 105&106 m)`r] Hkkñlñ vkSj fgekapy çns'k] Hkkx&2] i`ñ 204

15 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 13

16 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 221

17 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 200

18 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 102

19 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 200

20 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 101

21 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 188

22 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 24

23 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfed] i`ñ 8

24 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkSUn;Zcks/k vkSj rqylhnkl] i`ñ 35

25 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkSUn;Zcks/k vkSj rqylhnkl] i`ñ 200&231

26 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkSUn;Zcks/k vkSj rqylhnkl] i`ñ 250

27 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkSUn;Zcks/k vkSj rqylhnkl] i`ñ 279

28 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkSUn;Zcks/k vkSj rqylhnkl] i`ñ 280

29 Hkkxor] egkRE;] i`ñ 1-48

30 jkepUæ 'kqDy & fgUnh lkfgR; dk bfrgkl] i`ñ 35

31 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 445

32 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 454

33 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 455

34 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 102&108

35 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 102&108

36 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 125&126

37 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 109&116

38 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 117&125

39 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 142

40 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 148

41 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 148] 192] 193

42 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 143&144

43 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 177

44 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 194

45 ¼i½ jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 6]

¼ii½ jkefoykl 'kekZ & jkepUæ 'kqDy vkSj fgUnh vkykspuk] i`ñ 56

46 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 45&46

47 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 48

48 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 43&44

49 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 93

50 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 119

51 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 46

52 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 164

53 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 114

54 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 54

55 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 57

56 jkefoykl 'kekZ & yksd tkxj.k vkSj fgUnh lkfgR;] i`ñ 23

57 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 68&76

58 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 93

59 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 163&164

60 jkefoykl 'kekZ & ekDlZokn vkSj çxfr'khy lkfgR;] i`ñ 57

61 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 114&115

62 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 120

63 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 120&122

64 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 122&123

65 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 122&141

66 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 135

67 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 137&138

68 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 194

69 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 194&195

70 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 197] lanHkZ thñxksihukFku & dsjfy;ksa dh fgUnh dks nsuA

71 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 90&91